

## इकाई 3 आधुनिक भारत में राजनीतिक विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ

### इकाई की रूपरेखा

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 आधुनिक भारतीय विचारधारा की दो प्रावस्थाएँ
- 3.3 सामाजिक सुधार और "हिन्दू पुनर्जागरण"
  - 3.3.1 सुधारकों की दो बौद्धिक चेष्टाएँ
  - 3.3.2 सुधारवादी विचारधारा के प्रकार
- 3.4 राष्ट्रवाद का आगमन
  - 3.4.1 "आंतरिक" और "बाह्य" प्रभाव क्षेत्र
  - 3.4.2 राष्ट्रवादियों की चिन्ताएँ
- 3.5 मुस्लिम विचारधारा की विशिष्टताएँ
  - 3.5.1 मुस्लिम इतिहास और विचारधारा की विशिष्टता
  - 3.5.2 समाज सुधार की पहल
  - 3.5.3 साम्राज्यवाद विरोधी धाराएँ
- 3.6 निचली जातियों का विद्रोह
- 3.7 सारांश
- 3.8 अभ्यास प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारधारा की प्रमुख विशेषताओं पर चर्चा की गई है। यह कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि विचारधारा की अकेली कोई धारा नहीं होती है जिसे हम "भारतीय" कह सकें। न ही कालावधि में, माना कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त के बीच चिन्ता निरन्तर रही है। सार रूप में लेने से जटिलताएँ कम होती हैं परन्तु अल्पसंख्यक या आश्रितों की आवाज के प्रति पूरा न्याय नहीं होता है, इस प्रकार उन्हें आगे अधिक हाशिये पर किया जाता है। यदि आप इस बात को ध्यान में रखें तो अधिक अच्छा होगा कि अधिकांश आधुनिक भारतीय राजनीतिक और सामाजिक विचारधारा औपनिवेशिक संघर्ष के अनुभव द्वारा प्रकट हुए हैं। यह इस विश्व के अंदर है कि हमारे अधिकांश विचारक भिन्न भिन्न समुदायों और सामाजिक समूहों से आए हैं और अपने बौद्धिक राजनीतिक यात्रा पर अग्रसर हुए हैं।

जैसा कि पिछली इकाई में बड़े बौद्धिक प्रश्नों का उल्लेख किया गया है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश विचारकों ने अपने सामने जो प्रश्न रखा, वह था, भारत जैसा विशाल देश कैसे अधीन किया गया? यदि वह प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश विचारकों के सामने था, जो उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के बाद में लिख रहे थे, उनके सामने था "स्वतंत्रता" का प्रश्न, "हम" औपनिवेशिक शासन से कैसे मुक्त हो सकते हैं? यह अधिक जटिल प्रश्न है जो आपके सामने आज प्रकट हो सकता है क्योंकि जैसा कि हमने पिछली इकाई में देखा कि कोई पूर्व निर्धारित सत्ता नहीं है जिसकी स्वतंत्रता के लिए प्रयास किया जा रहा है। इसलिए प्रत्येक प्रकार के विचारकों के लिए उपर्युक्त प्रश्न "हम"

मतभेदपूर्ण है। हम इसे "व्यक्तित्व की खोज" भी कह सकते हैं इसके लिए व्यक्तित्व उन विचारकों को उतना स्पष्ट कभी नहीं हुआ जितना यह आज "हम" हैं।

### 3.2 आधुनिक भारत की विचारधारा की दो प्रावस्थाएँ

हम मौटे तौर पर आधुनिक भारतीय विचारधारा को दो प्रावस्थाओं में विभाजित कर सकते हैं। पहली प्रावस्था थी जिसे प्रायः "सामाजिक सुधार" की प्रावस्था कहा जाता है। इस प्रावस्था के विचारक, जैसा कि हम देखेंगे, देशी समाज के आंतरिक पुनरुद्धार से अधिक संबंधित है और क्योंकि इसकी पहली बुदबुदाहट बंगाल में उत्पन्न हुई थी, इसे प्रायः "बंगाल पुनर्जागरण" कहा जाता था। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने, वास्तव में, यहाँ तक कि इसे भारतीय पुनर्जागरण के रूप में उल्लेख करना आरंभ किया, परन्तु उन कारणों से यह सही विवरण नहीं होगा जिन पर हम शीघ्र ही चर्चा करेंगे। दूसरी प्रावस्था अधिक जटिल और कई तरीकों में संरचित है, यह वह प्रावस्था है जिसे हम राष्ट्रवादी प्रावस्था का नाम दे सकते हैं। इस प्रावस्था में चिन्ताएँ निर्णायक रूप से राजनीति और सत्ता के प्रश्नों पर और औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता के प्रश्नों पर चली जाती है। यह स्मरण करना महत्वपूर्ण है कि जिसे हम "राष्ट्रवादी प्रावस्था" कह रहे हैं, केवल "शार्टहैण्ड" अभिव्यक्ति है, क्योंकि यह इस अवधि में ठीक है, बहुत अधिक प्रवृत्तियाँ और धाराएँ हैं जो "पुनर्जागरण" के शीर्षक के अधीन आसानी से सम्मिलित नहीं किए जा सकते हैं। कम से कम, मुस्लिम और दलित जैसे महत्वपूर्ण धाराएँ हैं जो इस अवधि में बौद्धिक तथा राजनीतिक "व्यक्तित्व की खोज" के लिए प्रकट हुए हैं।

इससे पहले कि हम उन दो विस्तृत अवधियों के विचारकों की विशिष्ट विशेषताओं पर चर्चा करें जिनकी हमने रूपरेखा दी है, फिर भी कुछ स्पष्टीकरण देना आवश्यक है। यद्यपि अधिकांश विद्वान इन्हें दो भिन्न प्रावस्थाओं या अवधियों के रूप में देखते हैं, इसलिए आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारधारा के इतिहास पर विचार करने का यह तरीका समस्यात्मक हो सकता है। ये काल निर्धारण बहुत व्यापक और अस्थायी हो सकते हैं, अध्ययन की सुविधा के लिए बनाए गए, किसी भी स्थिति में नियत और निश्चित अवधियों में उन्हें निर्धारित किया जाना चाहिए। वास्तव में, हम उन्हें दो व्यापक धाराओं के रूप में अधिक रचनात्मक दृष्टि से देख सकते हैं, जिसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि एक के बाद दूसरा आए। जैसा कि हम देखेंगे, सामाजिक सुधार की बहुत सी समस्याएँ हैं जो भिन्न भिन्न रूपों में हैं, और राष्ट्रीय प्रावस्था में लगातार बनी हुई हैं। वास्तव में, स्वयं राष्ट्रीय प्रावस्था से इस संबंध में दो बहुत स्पष्ट प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई हैं। दूसरी ओर, प्रबल या प्रमुख राष्ट्रवाद है जिसका प्रतिनिधित्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुख्य रूप से किया गया है, इसमें सामाजिक सुधार का एजेण्डा प्रमुख रूप से छोड़ा गया है, दूसरी ओर, अन्य संघर्षरत विवरण हैं जो सुधार एजेण्डा पर इतना अधिक जोर देते हैं कि इससे राष्ट्रवादी असुविधा अनुभव करते हैं। हम शीघ्र ही देखेंगे कि ऐसा क्यों होता है। हमें इस संबंध में यह देखने का भी अवसर मिलेगा कि इस प्रमुख राष्ट्रवाद में गांधी प्रायः अकेले ऐसे व्यक्ति थे जो राष्ट्रवादी आन्दोलन में सुधार एजेण्डा लाने का प्रयास करते रहे हैं।

### 3.3 सामाजिक सुधार और "हिन्दू पुनर्जागरण"

पूरी उन्नीसवीं शताब्दी में विशेषकर बंगाल और पश्चिम भारत में बौद्धिक कार्यकलापों का वास्तविक विस्फोट हुआ था। बंगाल में युवा बंगाल आन्दोलन था, और पत्रकार, विचारक और समाज सुधारक, जैसे राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, माइकिल मधुसूदन दत्त, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, स्वामी विवेकानन्द और ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने इस बुदबुदाहट को मूर्त रूप दिया। पश्चिम भारत में समाज सुधारक थे, जैसे बाल शास्त्री जम्भेकर, ज्योतिराव गोविन्दराव फूले, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, गोपाल गणेश आगरकर और स्वामी दयानन्द सरस्वती (जिसकी गतिविधियाँ केवल उत्तर

भारत में सीमित थी) और ऐसे कई अन्य महापुरुष थे जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से भारतीय समाज के आंतरिक पुनरुद्धार का प्रश्न हल किया। उन्होंने अपने स्वयं के समाज के पिछड़ेपन को सामने लाने के उद्देश्य से उसकी कटु आलोचना की। जैसा कि राममोहन राय ने इसके बारे में कहा "यह अंध विश्वास के घने बादल" थे जो पूरी धरती (अर्थात् बंगाल) के ऊपर मंडरा रहे थे, और इसी ने उसे सबसे अधिक चिन्तित किया। इसके फलस्वरूप उसे विश्वास हुआ कि बहुविवाह प्रथा और शिशु हत्या बहुत प्रचलित थी और बंगाली महिला की स्थिति "अन्तहीन दमन और दुर्दशा की थी" दयानन्द सरस्वती जैसे विचारकों ने मूर्तिपूजा और पुरोहित प्रपंच को ज्ञान की लालसा के विनाश के लिए उत्तरदायी माना। उनका विश्वास था कि ये भी अन्य प्रथाओं की तरह थी जिन्होंने हिन्दुओं को भाग्यवादी और अकर्मण्य बना दिया। वे मुद्दे जिन्होंने समाज सुधारकों की चिन्ताओं को बढ़ाया, मुख्यतया भारतीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति से संबंधित थी। सती, विधवा विवाह और नारी शिक्षा ऐसे मुख्य मुद्दे थे जिन्हें समाज सुधारकों ने उठाया। इसके लिए उन्होंने परम्परा की पुनः व्याख्या की, प्रायः परम्परागत व्यवहारों की भर्त्सना की और यहाँ तक कि सती जैसी बहुत घृणित प्रथाओं में से कुछ पर प्रतिबंध लगाने के लिए औपनिवेशिक सरकार से कानून बनाने का अनुरोध किया।

यह कहना अनावश्यक है, यद्यपि महिलाओं की स्थिति प्रमुख चिन्ता का मामला है परन्तु समान रूप से अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न भी हैं — जाति भेदभाव और छूआछूत इन सुधारकों में से बहुतों की यह आलोचना का विषय रहा है फिर भी, आपको ध्यान में रखना चाहिए कि जाति के प्रति उनका दृष्टिकोण ज्योतिबा फूले और बाद में डॉ. अम्बेडकर जैसे सुधारकों से भिन्न था। वे डॉ. अम्बेडकर की भांति निचली जातियों का उद्धार नहीं चाहते थे। परन्तु हिन्दू समाज की मुख्यधारा में उनका आत्मसात् करना चाहते थे। अधिकांश समाज सुधारकों का मानना था कि न केवल हिन्दू समाज भ्रष्ट हुआ है, बल्कि सैकड़ों भिन्न भिन्न समुदायों और जातियों में पृथक हुआ है और विभाजित हुआ है, इससे यह किसी प्रकार की "उभय इच्छा" विकसित करने में अक्षम बन गया। इसलिए हिन्दू समाज की एक ही समुदाय में पुनःसंस्थापित या पुनर्गठित करने की आवश्यकता है। अतः स्वामी विवेकानन्द अथवा दयानन्द सरस्वती ने कुछ कुछ क्रिश्चियन चर्च की तरह पुनर्गठन करने का प्रयास किया, जैसा कि आशीष नन्दी सुझाता है। यदि विवेकानन्द स्पष्टवादी थे कि कोई भी अन्य समाज "नीच व्यक्ति के गले पर इतनी निर्दयता से अपने पाँव नहीं रखता है जितना भारत में होता है" दयानन्द सरस्वती ने जाति की पुनः परिभाषा इस तरीके से करने का प्रयास किया जिससे केवल जन्म के आधार पर निर्धारित करना समाप्त हो। उन्होंने व्यक्ति की जाति प्रस्थिति निर्धारण में व्यक्तिगत प्रवीणता एवं उपलब्धि का मानदंड शामिल करने का प्रयास किया।

### 3.3.1 सुधारकों की दो बौद्धिक चेष्टाएँ

सुधारकों द्वारा किए गए दो स्पष्ट चेष्टाएँ हैं जिन्हें हमें याद रखना चाहिए। पहला, उनके आलोचक पश्चिमी उदारवादी विचारधारा को बहुत स्पष्ट रूप से सामने लाए। उनमें से अधिकांश ब्रिटिश शासक उन विचारों के जीते जागते प्रमाण थे। इसलिए वे ब्रिटिश शासन के खुले प्रशंसक थे। उदाहरण के लिए, जैसा कि बाल शास्त्री ने इसे देखा, बंगाल पर केवल साठ या सत्तर वर्षों के ब्रिटिश शासन ने उसे पहचान से परे रूपांतरित कर दिया। उन्होंने विगत के "हिन्सा, दमन और कुशासन" के स्थान पर "सुरक्षा और स्वतंत्रता" का माहौल देखा, जहाँ लोग "यूरोप की कला और विज्ञान का श्रेष्ठ ज्ञान" अर्जित करने में सक्षम हुए। जाम्मेकर का कथन, वास्तव में, ब्रिटिश शासन के बारे में पिछले समाज सुधारकों की समझ का अच्छा निरूपण है। यह याद रखा जाना चाहिए कि सुधारवादी विचारों की पहली पीढ़ी ने दुहरी चुनौतियों के सामने अपनी बौद्धिक यात्रा प्रारंभ की। एक ओर, औपनिवेशिक शासन की भारी उपस्थिति थी जो न केवल विदेशी सत्ता का बल्कि आधुनिक और "उन्नत" समाज का भी प्रतिनिधित्व कर रहे थे जिन्होंने विचारों जैसे विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में विस्मयकारी प्रगति की है।

उनके लिए इसने भारत जैसे देश को विज्ञान के विस्मयकारी विकास और सोचने के आधुनिक तरीके दिए। जिसने अधिकांश सुधारकों के लिए हिन्दू धर्म भी अपनाया था। यदि आधुनिक युग में स्वतंत्र और शक्तिशाली देश के रूप में उभरना था। दूसरी ओर उन ईसाई मिशनरियों द्वारा उभरते हुए देशी बुद्धिजीवी वर्ग के आगे लगातार चुनौती दे रहे थे जो हिन्दू धर्म और उसकी कुछ सबसे अधिक अमानवीय प्रथाओं, जैसे सती, बालिका शिशु हत्या और जाति दमन - विशेषकर छूआछूत की घृणित प्रथा के कटु आलोचक थे। इसलिए विधवा विवाह, महिला शिक्षा बहस और विवाद के प्रमुख मुद्दे थे। इन विकट चुनौतियों के लिए साथ-साथ दो बौद्धिक प्रयासों की आवश्यकता थी: (क) हिन्दू समाज में जो सड़न आरंभ हो चुकी है, उसका पता लगाना और उसकी आद्योपात आलोचना करना। इस प्रयोजन के लिए उन्होंने आधुनिक उदार विचारधारा और दर्शन को खुलकर स्वीकार किया। (ख) जैसा कि हमने पिछली इकाई में देखा, वे समान रूप से स्वयं अपना व्यक्तित्व भी बनाए रखना चाहते थे। पूर्णतः अपने व्यक्तित्व को नकारने से व्यक्ति महान नहीं होता है। इसलिए अधिकांश सुधारवादियों ने समकालीन प्राच्यविदों पर ध्यान आकर्षित करके महान और प्राचीन विगत का दावा किया। यहाँ तक कि राममोहन राय जैसे आंग्लोफिल (आंग्लरागी) को भी, उदाहरण के लिए, मिशनरी आलोचना का उत्तर देना पड़ा कि "विश्व को उसे ज्ञात की प्रथम उषाकाल के लिए हमारे पूर्वजों का ऋणी होना चाहिए जो पूर्व में प्रकट हुआ।" और उस भारत को ब्रिटिश से "विज्ञान, साहित्य और धर्म" के संबंध में कुछ नहीं सीखना है। पश्चिमी ज्ञान और उपलब्धियों का यह श्रद्धायुक्त भय तथा साथ ही प्राचीन भारतीय अतीत का महत्त्ववर्धन सभी दृष्टिकोण के सुधारवादियों की सामान्य विशेषता थी - यद्यपि एक विचारक से दूसरे विचारक भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विशेष बल अलग अलग था। उदाहरण के लिए पश्चिमी विचारकों और दार्शनिकों से अधिक अन्य प्रभावित हुए परन्तु दयानन्द, वास्तव में, प्रभावित नहीं हुए। फिर भी उन्होंने भी पश्चिम द्वारा की गई विपुल प्रगति को स्वीकार किया। उन्होंने सार्वजनिक कर्त्तव्य की उच्च भावना, ऊर्जावान स्वभाव और अपने धार्मिक सिद्धान्तों का पालन को इस प्रगति का श्रेय दिया न कि उनके वैज्ञानिक और दार्शनिक उपलब्धियों को। इसलिए उन्होंने पश्चिम की आधुनिकता और प्रगति के बारे में अपने अध्ययन से बहुत भिन्न निष्कर्ष निकाले जिसे उसने धार्मिक सुधार के माध्यम से हिन्दू पुनरुद्धार पर केन्द्रित किया।

यह विश्वास करने के कई कारण हैं, ब्रिटिश शासन और स्पष्ट रूप से हिन्दू प्रतिक्रिया के रूप में तथाकथित पुनर्जागरण की प्रारम्भिक प्रतिक्रियाएँ हैं। विभिन्न कारणों से हम इस इकाई में इस पर विचार नहीं करेंगे, यह हिन्दू समाज के अंदर था कि औपनिवेशिक आधुनिकता से पहला संकटपूर्ण संघर्ष शुरू हुआ। अन्य समुदायों, जैसे मुसलमानों से अन्य प्रतिक्रियाओं का अपनी खुद की विशिष्ट विशेषताएँ और इतिहास था तथा हम उन पर अलग से चर्चा करेंगे। फिर भी, हिन्दू समाज से उनकी अपेक्षाकृत पिछली बुदबुदाहट के दो तात्कालिक कारणों की पहचान कर सकते हैं। हिन्दू प्रतिक्रिया का एक तात्कालिक कारण वास्तव में यह तथ्य था कि हिन्दू समाज के अंदर ठीक-ठीक कुछ प्रथाएँ थी जिन्हें औपनिवेशिक शासन ने समाप्त करने का प्रयास किया। दूसरा कारण था कि विशिष्ट ऐतिहासिक कारणों के लिए यह हिन्दू अभिजात वर्ग था जिसकी पहुँच अंग्रेजी शिक्षा तक और प्रगतिशील परिवर्तनकारी विचारों तक थी। फिर भी, यह निरूपित करना अनुचित होगा, "भारतीय पुनर्जागरण" के रूप में हिन्दू समाज के अंदर से प्रतिक्रिया क्या थी?

एक समय वह था जब अधिकांश विद्वानों ने विशेष रूप से बंगाल पुनर्जागरण को यूरोपीय पुनर्जागरण के समकक्ष समझा। अधिक विशिष्ट रूप से "भारत के आधुनिक जागरण में बंगाल की भूमिका", जैसा कि इतिहासविद् सुशोभन सरकार ने कहा, यूरोपीय पुनर्जागरण में इटली द्वारा निभाई गई भूमिका के समान देखी गई थी। बाद के इतिहासविदों, जैसे सुमित सरकार और अशोक सेन ने, फिर भी, 1970 की दशब्दी में बंगाल पुनर्जागरण की रिक्तता की समीक्षा की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस अवधि के बौद्धिक उदबोधन का यह निरूपण, वास्तव में, पर्याप्त त्रुटिपूर्ण था। सुधारवादियों और उनके

विरोधियों के बीच विभाजन को 'प्रगतिशील' और परम्परावादियों के बीच विभाजन की प्रवृत्ति पुनर्जागरण की कहानी का अतिसरलीकरण था। उन्होंने देखा कि "अतीत से विच्छेद" का "अत्यधिक परस्पर विरोधी" स्वरूप की शुरुआत की गई थी, उदाहरण के लिए, राममोहन राय द्वारा हिन्दू अभिजात वर्ग की संरचना सुदृढ़ तत्वों को इसके साथ मिलाया गया था। वास्तव में, सुमित सरकार ने पिछले इतिहासविदों और विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विवरण की अपेक्षा पुनर्जागरण का अधिक संतुलित और जटिल चित्र प्रस्तुत किया गया। इसलिए जैसा कि मिक्खू पारीख कहता है इन प्रतिक्रियाओं को देखने पर ये औपनिवेशिक संघर्ष की प्रमुख रूप से हिन्दू प्रतिक्रियाएँ हैं। पारीख ने सुझाव दिया है कि इन हिन्दू विचारकों के लिए अपनी स्वयं की परिभाषा और यह समझने के लिए, कि औपनिवेशिक शासन क्या था, उसी कार्य के भाग थे। वे परिभाषा नहीं कर सके और औपनिवेशिक शासन तथा प्रतिलोमतः अर्थ किए बिना कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सके।

इस संदर्भ में गहन आत्म परीक्षा ने प्रारंभिक बुद्धिजीवी वर्ग के कार्य स्पष्ट किए। समानता और स्वतंत्रता के विचारों के साथ उपनिवेशवाद से संघर्ष और इसके माध्यम से भारतीय समाज में अभी तक विद्यमान कुछ अमानवीय व्यवहारों से भी उन्हें अवगत किया गया। यह वह भाग था जो पश्चिमी शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम था और इसलिए पश्चिमी मूल्यों में मग्न हो गया और सुधारों का अग्रदूत बन गया। चूँकि आप बाद की इकाइयों में अधिक विस्तार से भिन्न भिन्न विचारकों की स्थिति के बारे में पढ़ेंगे, यहाँ हम अलग-अलग विचारकों की स्थिति के बारे में विचार नहीं करेंगे। परन्तु राजनीतिक और सामाजिक विचारधारा के दृष्टिकोण से हम कुछ व्यापक तत्वों की पहचान नीचे करेंगे।

### 3.3.2 सुधारवादी विचारधारा के प्रकार

मिक्खू पारीख ने सुझाया है कि इन हिन्दू सुधारवादियों के तर्क परम्परा से प्राप्त निम्नलिखित चार प्रकार तर्कों में से एक या अधिक पर आधारित हैं परन्तु बदलते हुए समय की माँग को पूरा करने के लिए पृथक नवीनता का प्रयोग किया। पहला, उन्होंने धर्मग्रंथों का समर्थन माँगा, वह उनकी समस्याओं के लिए उन्हें अधिक अनुकूल प्रतीत हुआ। उदाहरण के लिए, विद्यासागर परास्मृति पर निर्भर था, जबकि राजा राममोहन राय ने उपनिषदों का आह्वान किया। दूसरा, उन्होंने उसे आह्वान किया जिसे वे साधारण धर्म कहते थे, उन्होंने नैतिकता के सार्वदेशिक सिद्धान्तों के अर्थों के लिए इसकी व्याख्या की। तीसरा, उन्होंने युग धर्म के विचार या उन सिद्धान्तों का समर्थन किया जो विद्यमान युग की आवश्यकताओं के अनुरूप थे। चौथा, उन्होंने लोक संघर्ष के विचार का आह्वान किया और "तर्क दिया कि विवादास्पद परम्परा के इतने गंभीर परिणाम थे कि जब तक उन्हें नहीं समाप्त किया जाता है यह हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की सम्बद्धता और व्यवहार्यता नष्ट कर देगा।" उदाहरण के लिए, यह उल्लेख करता है कि विद्यासागर ने तर्क दिया कि "अविवाहित विधवाएँ वैश्या बन रही हैं या अपने परिवार को भ्रष्ट कर रही हैं, के.सी.सेन ने तर्क दिया कि बाल विवाह हिन्दू जाति की उत्तरजीवितता को खतरे में डाल रहा है, दयानन्द सरस्वती ने विश्वास किया कि छवि पूजा आंतरिक साम्प्रदायिक झगड़ों की ओर ले जा रहा था।

वी.आर. मेहता ने सुझाव दिया है कि सुधारवादियों के इन बौद्धिक पहलों में अंतर्निहित कम से कम दो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक मुद्दे हैं। पहला, उन्होंने भाग्य और अन्य सांसारिकता के प्रति रुख बदलने के लिए तथा इस विश्व में कार्य के महत्व पर बल देने के लिए कठिन परिश्रम किया। यद्यपि हिन्दू/भारतीय विचारधारा की विशिष्ट विशेषताओं के रूप में आत्मा और आध्यात्मिकता के महत्व पर बल देते रहे, परन्तु अब अपना रुख बदलकर वे समुदाय की सेवा में उद्यम" के महत्व पर बल दिया। इस दृष्टि से उन्होंने आधुनिक विश्व की चुनौतियों के सामने इस सांसारिक चिन्ता धर्मनिरपेक्षता के महत्व पर बल दिया। दूसरा, उनकी पूछताछ का मुख्य केन्द्र एक व्यक्तिक नहीं था बल्कि समाज, समुदाय समग्र रूप

में मानवता रहा। वे समाज को उनके स्वयं के हितों के अनुसरण में व्यक्तियों के समूह के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि जैविक समग्र के रूप में वह सुझाता है कि यह ऐसा दो कारणों से था। पहला, भारत में पहले से ही एक सुदृढ़ परम्परा है जिसने जीव की पूर्णता या एकत्व पर जोर दिया है। दूसरा, व्यष्टिवादी विचारधारा का समाज पर उन्नीसवीं शताब्दी में कठोर प्रहार हुए थे। एक तीसरी विशेषता भी है, जिसका उल्लेख वह बाद के सामाजिक सुधार विचारधारा संबंध में भी करता है। इसमें लोगों के कल्याण की चिन्ता है और उन विचारधाराओं के प्रति जैसे "समाजवाद" और "समानता" विवेकानन्द और बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे विचारकों का आकर्षण है।

मेहता भी तत्त्वों के तीन व्यापक रूप से अभिज्ञेय स्रोतों का पता लगाता है जिनका पुनर्जागरण विचारधारा के गठन में अध्ययन किया गया है। पहला, "यूरोपीय पुनर्जागरण और सुधार की संस्कृति और प्रकृति" और अधिक विशेष रूप से बेन्थाम, मिल, कालिल और कोलेरिज की विचारधाराएँ जिनके माध्यम से लोकतंत्र, कानून का शासन तथा निजी उद्यम की भावना आई। ये विचार देशी अभिजात वर्ग को अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप उपलब्ध हुए। दूसरा, जर्मन दार्शनिकों, जैसे दूरवेलिंग, फिखते और हेर्डर के विचारों का प्रभाव था। परन्तु यह धारा है जिसने पिछले सुधारवादियों की अपेक्षा बाद के राष्ट्रवादियों को अधिक प्रभावित किया। इसमें उन्होंने वाल्क, समुदाय, कर्तव्य और राष्ट्र के विचारों पर बल दिया क्योंकि बंकिमचन्द्र, विवेकानन्द, बिपिनचन्द्र पाल और अरविन्द घोष जैसे राष्ट्रवादियों की अधिक तात्कालिक चिन्ता थी। मेहता द्वारा पहचान किया गया तीसरा स्रोत भारतीय परम्परागत विचारधारा है। यहाँ प्राचीन प्राच्यविद्या के महान विद्वानों, जैसे विलियम जान्स और मैक्स मूलर के कार्य जो प्राचीन भारतीय संस्कृति और ज्ञान को प्रकाश में लाए, उस अतीत की महानता के लिए नवीकृत आकर्षण का आधार बना। फिर भी, जैसा कि आप अनुवर्ती इकाइयों में देखेंगे, यह उन तीन स्रोतों का पहला और तीसरा है जिसने सुधारवादी विचारकों का ढाँचा तैयार किया। राष्ट्र के संबंध में चिन्ता और ब्रिटिश तथा उपनिवेश की प्रत्येक वस्तु की बहिष्कार उनमें सबसे अधिक आश्चर्यजनक अभाव है।

### 3.4 राष्ट्रवाद का आगमन

यह कहा जा सकता है कि वास्तविक राष्ट्रवाद ने अपनी उपस्थिति उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में दिखाई। इस प्रावस्था में विचारकों की चिन्ताओं और दृष्टिकोण में बहुत महत्वपूर्ण तरीके में परिवर्तन आया। यहाँ "राष्ट्र की स्वतंत्रता" की भारी चिन्ता और औपनिवेशिक शासन के प्रति प्रायः परस्पर विरोधी विद्वेष है। उनके सामने सामाजिक सुधारवादियों के असमान उन्होंने अपने सुधार क्रियान्वित करने के लिए औपनिवेशिक राज्य की संस्थाओं पर विश्वास नहीं किया। इसके विपरीत, उन्होंने सकारात्मक विरोध प्रदर्शित किया जिसे वे अब राष्ट्र के "आंतरिक मामलों" में औपनिवेशी राज्य द्वारा "हस्तक्षेप" मानते हैं। इसके साथ ही सामाजिक सुधारों पर राजनीतिक संघर्ष के विशेषाधिकार देने के प्रति समानान्तर प्रयास है।

#### 3.4.1 "आंतरिक" और "बाह्य" प्रभाव क्षेत्र

पार्थ चटर्जी का मानना है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक राष्ट्रवादियों के एजेण्डा से "महिलाओं का प्रश्न" लुप्त है। यद्यपि यह समाज सुधारवादियों के लिए प्रमुख था। हम यहाँ इस तथ्य का भी उल्लेख कर सकते हैं कि वास्तव में पहला मुख्य राष्ट्रवादी आन्दोलन 1891 के "एज ऑफ कान्सेप्ट विल" के इर्द-गिर्द हुआ, जहाँ राष्ट्रवादियों ने तर्क दिया कि यह राष्ट्र के कार्यों में हस्तक्षेप था और हिन्दू समाज को अपनी विशिष्टता से हाथ न धोने पड़े यदि इसे पास होने दिया गया। जैसा कि आप जानेंगे, इस विधेयक का अभिप्राय बारह वर्ष की आयु की लड़कियों से वैवाहिक संभोग निषेध है। आप यह भी जानेंगे कि विगत में अधिकांश सुधारवादियों ने, वास्तव में, कुछ प्रथाओं के निषेध में

औपनिवेशीय कानूनी हस्तक्षेप का अनुरोध किया था, यहाँ तक कि जब उन्होंने भी तथाकथित 'निजी' क्षेत्र में हस्तक्षेप किया था। यह भी याद रखा जाना चाहिए कि यह विवाद था कि बंगाल की सीमा के परे विस्तार और गोपाल आगरकर तथा बाल गंगाधर तिलक के बीच तरीकों को अंतिम रूप से त्यागने का अभिप्राय था कि पूर्ववर्ती सामाजिक सुधार के कारण उसका समर्थन और पश्चोयुक्त का दृढ़ता से विरोध करना। चटर्जी सुझाता है कि राष्ट्रवादियों के एजेण्डा से महिलाओं के मुद्दे के इस विलोपन से नया ढाँचे से कार्य करना पड़ा जिसे तब तक उसके स्थान पर रखा गया था। यह ढाँचा उसकी विशेषता थी जिसे चटर्जी राष्ट्रवादियों के "प्रस्थान की घड़ी" कहता है, और यह काफी विस्तृत थी, जहाँ अभिभावी चिन्ता थी, राष्ट्र की प्रभुसत्ता की। यहाँ चटर्जी का तर्क है कि राष्ट्रवाद दो क्षेत्रों के बीच भेद करने से आरंभ हुआ: ये क्षेत्र थे: "भौतिक" और "आध्यात्मिक" या इसका अन्य नाम क्या है, "बाह्य" और "आंतरिक" क्षेत्र। जैसा कि आपने ऊपर देखा, यह समाज सुधारवादियों द्वारा पहले से ही किया गया अंतर है और किसी अवसर पर वे भी दावा करते हैं कि वे आध्यात्मिक रूप से ब्रिटिश से श्रेष्ठ हैं, भले ही ब्रिटिश ने भौतिक प्रगति की है। तब राष्ट्रवादियों को क्या करना था, उन्हें पूर्णतः नए प्रकार की संरचना में इस विभेद को आगे ले जाना था। इसने स्वीकार किया कि उपनिवेशी राष्ट्र के रूप में यह भौतिक क्षेत्र में उपनिवेशकों के अधीन था। परन्तु एक ऐसा क्षेत्र था कि उपनिवेश की इस तक पहुँच नहीं थी: यह संस्कृति और आध्यात्मिकता का आंतरिक क्षेत्र था। यहाँ राष्ट्र ने अपने आपको प्रभुसत्ता सम्पन्न घोषित किया। इसका क्या अभिप्राय था? इसका अभिप्राय था कि अब से इस आंतरिक क्षेत्र में यह उपनिवेशी राज्य द्वारा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप की अनुमति नहीं देगा। अब से सामाजिक सुधार का प्रश्न "आंतरिक मामला" बनेगा, इसका समाधान भौतिक क्षेत्र में राष्ट्र की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद किया जाएगा। फिर भी, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सभी राष्ट्रवादी स्वतः सुधारों के विरुद्ध थे। इसका अभिप्राय यह था कि अब प्रश्न तब निपटाए जाएँगे जब राज्य की सत्ता राष्ट्रवादियों के हाथ में आएगी।

इस विभेद का एक अन्य पहलू है जिस पर चर्चा चटर्जी ने नहीं की, परन्तु जिसे हम जाति सुधारों के प्रश्न के संबंध में आसानी से देख सकते हैं। एज़ ऑफ कन्सेट आन्दोलन के शीघ्र बाद तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रवादियों ने भारतीय सामाजिक सम्मेलन का पंडाल जला दिया जिसका प्रयोग साथ-साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्मेलन करने के लिए प्रयुक्त किया जाना था और समाज सुधार के प्रश्नों पर चर्चा करने के लिए मंच के रूप में प्रयोग किया जाना था। यह वह अवधि थी जब तथाकथित "नरमपंथी" कांग्रेस के नेतृत्व में थे। गोखले और रानाडे जैसे नरमपंथियों के तरीके संवैधानिक सुधार के ढाँचे में और पिछले सुधारवादियों की स्थिति के अनुसार थे। राष्ट्रवाद के आगमन से यह सब बदल गया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर जो शक्ति थी, शीघ्र ही तथाकथित "गरमपंथियों" के हाथ में चला गया, खासतौर पर लाल-बाल-पाल गुट (अर्थात् लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और बिपिन चन्द्र पाल) जैसा कि महिलाओं के मामले में प्रस्ताव पारित हुआ था, यहाँ जाति सुधार पर कोई प्रस्ताव पारित हुआ था; यहाँ जाति सुधार पर कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया गया; उन्हें "उपनिवेश विरोधी एकता व्यापक हितों में" आस्थागित किया गया। समाज सुधार के सभी मुद्दों को अब से राष्ट्रीय एकता में "फूट डालने वाला" समझा गया। जैसा कि यह हुआ है, यहाँ भी एक और घटना हुई है: प्रभुसत्ता के रूप में "आंतरिक" क्षेत्र के सीमांकन से बहुत सामाजिक रूप से रूढ़िवादी विचारधाराओं ने भी राष्ट्रवादी आन्दोलन को अब आसानी से प्रभावित कर सकते थे। यहाँ हमें राष्ट्रवाद की तीखी आलोचना का पता लगाना चाहिए जिन्हें न केवल ज्योतिबा फूले और बी.आर. अम्बेडकर जैसे नेताओं और विचारकों ने भी किया जो उभरते हुए राष्ट्रवाद को पूर्णतः हिन्दू कार्य के उभरते हुए राष्ट्रवाद को पूर्णतः हिन्दू कार्य के रूप में देखने लगे थे। चूँकि राष्ट्रवाद जन आन्दोलन बन गया था और चूँकि अधिकांश: राष्ट्रवादियों ने प्रारम्भी राष्ट्र को मुख्यतः हिन्दू राष्ट्र के रूप में देखा, इसलिए आन्दोलन के लिए हिन्दू प्रतीकों के पुनर्जीवन का इस प्रावस्था में सहारा लिया गया।

फिर भी, राजनीतिक दृश्य में गांधी के प्रवेश से, हम कुछ सीमा तक इस ढाँचे से किंचित परिवर्तन देख सकते हैं। यद्यपि गांधी ने स्वयं हिन्दू प्रतीकों के प्रयोग का सहारा लिया। वह पूरी तरह से जानता था कि सामाजिक सुधार एजेण्डा अभी अधूरा है। फिर भी, यह दिलचस्प है कि यद्यपि उसने अपने आपको उसके पूर्ववर्तियों द्वारा यथा परिभाषित राष्ट्रवाद के ढाँचे के अंदर पाया और आंतरिक क्षेत्र में प्रभुसत्ता के विचार को स्वीकार किया, फिर भी वह समाज सुधार के प्रश्न पर अपने आग्रह से महत्वपूर्ण विचलन किया। अन्य राष्ट्रवादियों की तरह नहीं, वह इसे पूर्णतः छोड़ने के लिए तैयार नहीं था और "आत्मशुद्धि" के माध्यम से स्वयं अपने अंदर से छूआछूत समाप्त कर हिन्दू समाज को स्वयं मुक्त करना है। यह भी दिलचस्प है कि यद्यपि उन्होंने स्वयं अपने आप राष्ट्रत्व की कल्पना के रूप में "राम राज्य" का विचार प्रयोग किया था, उन्होंने राष्ट्रवादी संघर्ष की मुख्यधारा में मुसलमानों को खींचने का अथक प्रयास किया।

### 3.4.2 राष्ट्रवादियों की चिन्ताएँ

इस अवस्था में, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न तत्वों के बीच विभाजन देखना गलत होगा, जैसे "प्रगतिशील" और रूढ़िवादी" या "नरमपंथी" और "परम्परावादी" के बीच अंतर। क्योंकि बहुत से विद्वानों ने उल्लेख किया है, यहाँ तक कि जिन राष्ट्रवादियों ने सुधारवादियों के दृष्टिकोण को अस्वीकार किया था, वे पूरी तरह से नरमपंथियों के एजेण्डा पर कार्य कर रहे थे। उनका हिन्दू परम्परा का महत्व हिन्दू धर्म की विद्यमान प्रथाओं के महत्व के लिए नहीं था। वास्तव में वे सभी सुधारवादियों की तरह ऐसा आधुनिक और पुनर्गठित हिन्दू समाज चाहते थे जो उभरते हुए राष्ट्रों का मुख्य भाग बने। उनके लिए हिन्दू होना धार्मिक पहचान के बदले राष्ट्रीय पहचान का चिह्न था। यही कारण है कि जैसा कि मिक्सू पारीख ने कहा है, ये विचारक (जिन्हें वह छिद्रान्वेषी परम्परावादी कहता है) अधिकांशतः राज्यकला, राजनीतिक नैतिकता की स्वायत्तता, राजनीतिक यथार्थवाद, इच्छा शक्ति और साहस जैसे मुद्दों से चिन्तित थे जो सुधारवादियों के प्रवचन में नहीं थे। और ये सभी पूर्णतः आधुनिक समस्याएँ थीं। धार्मिक पहचान के बदले राष्ट्रीय निशान के रूप में "हिन्दुत्व" से यह संबंध न केवल कांग्रेस राष्ट्रवादियों के मामले में था बल्कि हिन्दुत्व की विचारधारा के लोक विनायक दामोदर सावरकर की विचारधारा में भी था। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि सावरकर जो गांधी प्रभुत्व के कांग्रेस आन्दोलन से दूर रहा, पूर्णतः आधुनिकतावादी और नास्तिक था, जिसने सभी प्रकार के अंधविश्वासों का विरोध किया तथा जो पश्चिम के वैज्ञानिक और दार्शनिक उपलब्धियों से बहुत प्रभावित था। वास्तव में अम्बेडकर द्वारा किए गए कार्यों को उसने बहुत मान दिया परन्तु गांधी ने नहीं दिया जो उसके उद्देश्य के प्रति शंकालु था। उन्होंने उसे अपने हिन्दू महासभा समारोहों से जोड़ा। इससे भी अधिक दिलचस्प यह है कि गांधीजी की जो आलोचना सावरकर ने की है, वह इसलिए थी कि गांधीजी ने आधुनिक समझ, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को पूरी तरह से अस्वीकार किया था। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी नेहरू की भांति गांधीजी ने सावरकर की शिकायत उसकी (गांधीकी) "अयुक्ति" और "पिछड़ापन दृष्टि" विचारधारा से संबंधित थी।

यह स्पष्टतः राष्ट्रवादी प्रावस्था की समस्या है जिसने बहुत से विद्वानों और इतिहासविदों को चतुराई से पृथक कर दिया। क्योंकि यह घोषित करना आधुनिकतावादी विरोधी और सनातनी हिन्दू गांधी है जो भारत की स्वतंत्रता की पूर्व शर्त के रूप में हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए दृढ़ता से खड़ा रहा, कि आधुनिकतावादी और धर्मनिरपेक्षवादी नेताओं, जैसे मदन मोहन मालवीय, पुरुषोत्तम दास टंडन और गणेशशंकर विद्यार्थी प्रायः हिन्दू राष्ट्रवाद की भाषा बोलते हुए प्रतीत होते थे। ये गांधीजी थे जिन्होंने खिलाफत असहयोग आन्दोलन हिन्दुओं और मुस्लिमों के सहयोग को संभव बनाया। यह सत्य है कि हिन्दू सनातनी पहचान पर गांधीजी का आग्रह अंततः न तो मुसलमानों में और न ही दलित/निचली जाति के नेताओं में उनके हितों की सुरक्षा के बारे में विश्वास उत्पन्न कर सका। दलितों के मामले में,



वास्तव में, एक स्तर पर तो समस्या अधिक जटिल थी क्योंकि वे चाहते थे कि नए राष्ट्र के अंदर उनकी स्वतंत्र राजनीतिक आवाज हो और यह केवल गांधीवादी आत्म शुद्धिकरण तरीकों से प्राप्त नहीं हो सकती थी।

### 3.5 मुस्लिम विचारधारा की विशिष्टताएँ

हमने उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के उन व्यापक कंटूरों का पता लगाया है जो हिन्दू समाज से उत्पन्न हुए हैं। भारत में मुस्लिम समाज अभी भी अज्ञान और गलतफहमी के सागर में डूबा हुआ है और उसके अंदर से जो भी विचारधारा उत्पन्न हुई है उनकी भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों को समाप्त करने के लिए अभी बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है। हम नीचे इसकी व्यापक रूपरेखा देंगे परन्तु प्रारंभ में यह कहा जा सकता है कि वहाँ स्थिति कम जटिल नहीं है तथा अखंड मुस्लिम समाज के सामान्य मिथक उतने ही भ्रामक हैं जितने अन्य किसी संमुदाय के होते हैं। बदलते हुए विश्व की प्रतिक्रियाओं की परिसीमा है जिसका हमें यहाँ पर सामना करना है। उदाहरण के लिए उल्मा (अर्थात् धार्मिक विद्वान) फरांगी महल का दृष्टान्त ले सकते हैं जिसे 1970 के दशक के मध्य में फ्रांसिस राबिन्सन के अग्रणीय अनुसंधान द्वारा प्रकाश में लाया गया। राबिन्सन ने नोट किया कि यह प्रवृत्ति, बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में इतनी सक्रिय थी, शान्त कर दिया गया था, भारतीय और पाकिस्तानी दोनों राष्ट्रवादियों के वृत्तान्तों में दफना दिया गया। उसने नवइस्लामिक विरोध में विशेषकर खिलाफत आन्दोलन और जमाइत-उल-उलेमा-ए-हिन्द की स्थापना में फरांगी महल के मौलाना अब्द-अल बारी की महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख किया। जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निकट सहयोग में अधिकांश भाग के लिए कार्य किया और पृथक होमलैण्ड के लिए मुस्लिम लीग की माँग का विरोध करते रहे।

भारत में मुस्लिम सोसाइटी के बारे में हमें दो व्यासीय दृष्टि से विपरीत दृष्टिकोणों को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। एक तो हिन्दू राष्ट्रवादियों द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया था जो मुस्लिमों को स्थानीय समाज और संस्कृति से पृथक विदेशी समझते थे और दूसरे का प्रतिनिधित्व धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवादियों द्वारा किया गया था जो मात्र समन्वयवादी संस्कृति देखते हैं और इस्लामिक तथा हिन्दू संस्कृति के संयुक्त तत्वों को व्यक्त करते हैं। हमें वह प्रक्रिया देखने की आवश्यकता है जो कभी अशरफ (अभिजात या कुलीन) की श्रेष्ठ पर्सों-इस्लामी संस्कृति थी, वह धीरे-धीरे ज्ञान, कला और संगीत आदि की स्थानीय परम्पराओं से सम्वाद में आए और यह ऐसी प्रक्रिया है जिसका विस्तार कई सदियों तक हुआ है और इसमें कई परस्पर विरोधी आरोह-अवरोह और प्रवृत्तियाँ सदैव सक्रिय रही हैं। केवल एक उदाहरण लें तो जैसा कि राबिन्सन लिखता है, अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश सूफी वाहदात-अल-वूजूद (प्राणी की एकता) के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं, जिन्होंने एक ही परमात्मा के आविर्भाव के रूप में समस्त सृष्टि को देखा और इस प्रकार उनके लिए हिन्दुओं के साथ उभयनिष्ठ धरातल खोजना संभव हुआ। परन्तु तेरहवीं शताब्दी की यह शिक्षा स्पेनिश रहस्यवादी इस्न-अल-अरबी को नक़्शबंदी आदेश द्वारा भी चुनौती दी गई, जिसने धर्मग्रंथों की औपचारिक शिक्षा पर जोर दिया क्योंकि उन्होंने ईश्वर के प्रकटीकरण को संपुटित किया। फिर भी यह प्रवृत्ति काफी लम्बे समय तक काफी कम लोकप्रिय रही। तथापि हम इस इकाई में आधुनिक मुस्लिम विचारधारा के इस इतिहास पूर्व पर विस्तार से चर्चा नहीं कर सकेंगे, फिर भी, इसे पृष्ठभूमि के रूप में ध्यान में रखेंगे।

#### 3.5.1 मुस्लिम इतिहास और विचारधारा की विशिष्टता

ब्रिटिश शासन के आगमन का अर्थ है, मुस्लिम अभिजातवर्ग के शासन की राजनीतिक शक्ति का अधिक तात्कालिक ह्रास, विशेषकर उत्तर भारत और बंगाल में। और ब्रिटिश सत्ता से यह संघर्ष प्लासी के युद्ध (1757) से महान विद्रोह जिसे हमें 1857 का विद्रोह कहा जाता है तक चलता रहा। इसमें

समग्र रूप से मुसलमानों की सहभागिता व्यापक रूप में थी इसमें केवल अभिजात वर्ग ही नहीं था। परिणामस्वरूप, इस अवधि के तत्काल बाद ब्रिटिश सत्ता की संस्था, पूर्ववर्ती शासक अभिजात वर्ग और औपनिवेशिक शासकों के बीच संबंध विद्वेषपूर्ण होगा। यह विद्वेषपूर्ण शत्रुता कुछ आंतरिक थी जो मुस्लिम रुख को आधुनिकता की ओर लायी। कुल मिलाकर वे अंग्रेजी शिक्षा और विचारों से तथा ब्रिटिश सत्ता से सम्बद्ध संस्थाओं से दूर रहे प्रतीत हुए। जैसा आप देख सकते हैं, यह पिछले हिन्दू बुद्धिजीवी वर्ग के रुख से बिलकुल विपरीत था, जिसने पर्याप्त कम कठिनाई से नए विचारों और संस्थाओं को अपना लिया था। इस जटिलता का एक दृष्टान्त, 1825 में स्थापित दिल्ली कालेज के उदाहरण में देखा जा सकता है जिसने एक ही संस्था में प्राच्य और पश्चिमी दोनों शिक्षा साथ साथ दी। 1827 में इसने अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया। फिर भी 1857 के विद्रोह के बाद पश्चिमी शिक्षा रोक दी गई और 1864 में ही पुनः आरंभ की जा सकी। फिर भी वास्तविकता यह है कि इस प्रकार की संस्था स्थापित की गई थी जो ब्रिटिश के विरोध के कुछ अनुभव के बावजूद पश्चिमी ज्ञान के लिए कुछ खुलेपन का संकेत है। वास्तव में मुजीब अशरफ ने दावा किया है कि दिल्ली कालेज और बाद की अवधि में जामिया मील्लिया इस्लामिया जैसी संस्थाओं के लिए एक मॉडल बना। दिल्ली कालेज ने उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों और लेखकों, जैसे जाकुल्लाह, मुहम्मद हुसैन आजाद और नाजिर अहमद नाजीर पैदा किए।

### 3.5.2 समाज सुधार की पहल

तथापि इस संबंध में महत्वपूर्ण संधिकाल सर सैयद अहमद खॉन (1817-99) का आविर्भाव था जिसे मुस्लिम समाज में उदारवाद और आधुनिकता का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने महान विद्रोह का विरोध किया क्योंकि उनका विश्वास था कि ब्रिटिश शासन रहने के लिए आया है अपितु उसके सम्पर्क से आधुनिक विचारों को आत्मसात् कर बहुत कुछ प्राप्त किया जाना था। यह सुविदित है कि आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचार करने के लिए उन्होंने अपना मोहम्मदन आग्लो-ओरियण्टल कालेज स्थापित किया जो कालान्तर में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय हुआ। 1870 में इंग्लैण्ड से अपनी यात्रा से वापस आने के बाद उन्होंने अपनी उर्दू पत्रिका *तहजीब-उल-इखलाक* का प्रकाशन प्रारंभ किया जिसमें मुसलमानों को अपनी धार्मिक विचारों का सुधार करने के लिए प्रेरित किया गया था। सर सैयद की बुनियादी बौद्धिक चेष्टा यह तर्क देने की थी कि इस्लाम आधुनिक विचारों और मूल्यों के अतुल्य नहीं है। इस कारण से यद्यपि वह प्रशिक्षण द्वारा धार्मिक विद्वान नहीं था परन्तु सुधार या उसके आग्रह ने इतिहास के सुस्थापित तरीके का मार्ग अपनाया जिसने बदलते हुए समय के साथ चलने के लिए स्वतंत्र तर्कों का प्रयोग करने का आह्वान किया। ब्रह्म वैज्ञानिक दृष्टि से इसलिए उन्होंने स्वयं अनावश्यक भागों से इस्लाम के सार तत्व में विभेद करने का कार्य किया जिसे उन्होंने उन "सामाजिक प्रथा और रीतिरिवाज" के रूप में वर्णन किया, जो जोड़े गए थे और जिसका उन्होंने तर्क दिया कि वे अब आधुनिक विश्व में अपनी प्रासंगिकता खो चुके हैं। उदाहरण के लिए, इनमें ब्याज लेने पर इस्लामिक प्रतिबंध था। ऐसा करने से उन्होंने इस्लाम के मात्र वैध स्रोत के रूप में कुरान पर जोर देना आरंभ किया। कुरान के साथ-साथ उन्होंने अंधविश्वास और विवेकहीनता की "अतिवृद्धि" का सामना करने के लिए अपने प्रयास में "कारण" और प्रकृति के महत्व पर जोर दिया जिन्हें सदियों तक धर्म से जोड़ा गया था। आप देख सकते हैं, यह एक प्रयास था जो स्पष्ट रूप से हिन्दुओं द्वारा अपने समाज के लिए किए गए उन प्रयासों के समानान्तर था जिनकी चर्चा ऊपर की गई है। निस्संदेह, शिक्षित मुस्लिमों में उनकी परियोजना के लिए भारी समर्थन था, यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि वे अलीगढ़ कालेज की स्थापना करने के लिए उन्होंने दान के रूप में पर्याप्त धन एकत्र किया।

सैयद अहमद खान के सुधार प्रयासों से सम्बद्ध अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों में थे; मुहसिन-उल-मुल्क के रूप में सुपरिचित सैइद मेहंदी और मौलाना शिब्ली नुमानी। सैयद अहमद खान से मुहसिन-उल-मुल्क

से मतभेद था, जहाँ तक उन्होंने मुस्लिम पुरोहित वर्ग के अपने पक्ष में करने का प्रयास किया और इसलिए इस्लामिक सिद्धान्तों के आधार पर उनसे वार्ता करना आवश्यक समझा। शिब्ली नुमानी को अल्ताफ हुसैन हाली और मोहम्मद इकबाल कवियों के साथ भारत में आधुनिक मुस्लिम समाज के मुख्य साहित्यिक व्यक्तियों में से एक माना जाता था। देशी भाषा में आधुनिक साहित्यिक समालोचना का संस्थापक, वह महान कवि और इस्लाम के इतिहासकार के रूप में लब्ध प्रतिष्ठ था। यद्यपि शिब्ली ने अलीगढ़ स्कूल के प्रयासों का समर्थन किया वह देशी भाषा जगत और इस्लाम के विश्व में लगभग पूर्णतः जड़ जमा चुका था। उनकी महत्वाकांक्षा अंदर से इस्लाम में सुधार करना था। ऐशा जलाल के अनुसार वह अधिक जटिल व्यक्ति था क्योंकि उसे "उदार आधुनिकतावादी" के रूप में या "आधुनिक विरोधी परम्परावादी" के रूप में वर्गीकरण नहीं किया जा सकता था। सुधारवादी कार्यक्रम के प्रति उसकी निष्ठा होने के बावजूद उसने इस्लामिक विद्वता के जगत में कार्य जारी रखा। बाद के वर्षों में उसने एक भिन्न परियोजना पर कार्य किया अलीगढ़ आधुनिकतावादियों और परम्परावादियों के बीच खाई पाटने का प्रयास करना था। जो देवबंद और फरांगी महल के उलेमा का प्रतिनिधित्व करते थे। अपने बाद के वर्षों में वह सईद अहमद खान का आलोचक भी बन गया, जिसे उसने मुसलमानों में राजनीतिक चेतना की वृद्धि रोकने का उत्तरदायी माना, जिसे उसने उच्च वर्ग, उत्तर भारत के जमींदारी तत्वों के मंच के रूप में देखा और माना कि मुस्लिमों के हितों की पूर्ति उनकी "अल्पसंख्यक मनोग्रंथि" दूर करके और कांग्रेस के साथ सामान्य उद्देश्य पूरा करके बेहतर हो सकती है।

### 3.5.3 साम्राज्यवाद विरोधी धाराएँ

धार्मिक कट्टर धर्मवादी मुस्लिमों, अर्थात् विद्वान उलेमा ने अलीगढ़ स्कूल पर कटु प्रहार किए। अलीगढ़ स्कूल और उलेमा के बीच संघर्ष को प्रायः "आधुनिकवादियों" और "परम्परावादियों" की बीच संघर्ष के रूप में देखा गया है परन्तु यह कुछ अभिप्राय से अति सरलीकरण है। सैयद से उलेमा की मुख्य समस्या यह प्रतीत होती है जिसे वे उसकी अंग्रेजी की प्रशंसा या उसकी अंग्रेजीयत या अंग्रेजीपन मानते थे। यहाँ कुछ समानान्तर था जिसे हमने राष्ट्रवादियों के मानने में देखा है कि वे सामाजिक सुधारवादियों से हटे हैं, जहाँ तक उलेमा का प्रश्न है उसने उसकी अंग्रेजीयत को बहुत अधिक शत्रु सहयोगी देखा। इसलिए यह दिलचस्प है कि उसके सबसे अधिक कटु आलोचक वे भी थे जो स्पष्ट रूप से साम्राज्यवाद विरोधी थे और ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रवादी आन्दोलन से जुड़ने का प्रयास करते थे। उसके सबसे अधिक कटु आलोचकों में फारसी विद्वान जमालुद्दीन-अल-अफगानी था जो ब्रिटिश के विरुद्ध हिन्दू मुस्लिम एकता का भी समर्थक था। ऐशा जलाल कहता है कि अफगानों के उपनिवेशवाद विरोध के साथ धार्मिक इस्लामी विश्ववाद का बहुत मुसलमानों ने स्वागत किया और सैयद अहमद खान की ब्रिटिश के प्रति निष्ठा को उचित नहीं माना।

बीसवीं शताब्दी में अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति, जैसे कवि-दार्शनिक मोहम्मद इकबाल, मोहम्मद अली जिन्नाह, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मौलाना अबुल अला मौदुदी आगे आए। उस समय तक राष्ट्रवाद सामूहिक जनशक्ति का रूप ग्रहण कर चुका था और यह स्पष्ट हो रहा था कि इस पर हिन्दू प्रवृत्ति, मुस्लिम राजनीति और विचारधारा लगातार हावी हो रही है और तेजी से परिवर्तित हो रही है। एक स्तर पर मोहम्मद इकबाल इस्लाम के महान आधुनिककर्त्ताओं में से एक था जिसने इस विश्व में धर्म में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कार्य और आयोजन की भावना उत्पन्न की। वह कट्टरवाद का घोर विरोधी था जो साधारणतया आधुनिकपूर्व धर्मों में था खुदी की धारणा संचारित करने का अथक प्रयास किया उसकी नियति उसके ही हाथों में हो सकती थी। जैसा कि डब्ल्यू सी स्मिथ ने इसका उल्लेख किया, उस सीमा तक उसने ईश्वर के लोकातीत की धारणा भी परिवर्तित की — कि ईश्वर सर्वव्यापी है — यह तर्क देते हुए कि ईश्वर इस संसार में यहाँ भी रहता है ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ नहीं आता है परन्तु इसके लिए अपने आपमें दूढ़ों उसमें खो जाओ और उसके अनुसार कार्य करो। यह करने

में वास्तव में वह इस्लाम की आलोचना कर रहा था क्योंकि मुल्लाओं द्वारा इसका प्रयोग किया गया था। जब इकबाल यूरोपीय दर्शन से – विशेषकर, निट्जख (Nietzsche) और वेर्गसन (Bergson) से प्रभावित हुआ, वह उन सभी के लिए समान रूप से तिरस्कार का पात्र हो गया जो सोचते थे कि वे केवल पश्चिम की नकल करने मात्र से आधुनिक बन सकेंगे। यहाँ भी पुनः हिन्दू विचारधारा के बहुत समान जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, वह भी यह देकर पश्चिमी पर अपने सम्पूर्ण प्रहार से विज्ञान प्राप्त करना चाहता था कि पश्चिम का खंडन करते समय पूर्व को पश्चिम अपनाना चाहिए। यह भी दिलचस्प है कि सैयद अहमद खान से अमीर अली तक सभी समाज सुधारकों की भांति उसने भी इजतिहाद का मार्ग यह तर्क देकर अपनाया कि इस्लाम के संकट के समय ऐसा भी समय था, इसका सहारा सावधानी के साथ लिया जाना चाहिए।

यह भी याद रखना महत्वपूर्ण है कि इस्लामिक सर्वमुक्तिवाद का उपासक क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की पश्चिमी विचारधारा के कटु आलोचक होने के कारण इकबाल अपने जीवन के काफी बाद तक हिन्दुओं और मुसलमानों की अधिक गहरी एकता के समर्थक थे जैसा कि उनकी कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताओं से ज्ञात होता है। यहाँ हम उन जटिल राजनीतिक प्रक्रिया पर विचार नहीं करेंगे जिससे इकबाल क्षेत्रीय राष्ट्रवाद के शत्रु का अविश्वसनीय शत्रु हो गए। अंततः अपनी पूर्ण शक्ति पाकिस्तान आन्दोलन पर लगा दी।

मौलाना अबुल कलाम आजाद का व्यक्तित्व अधिक तथाकथित रूप से "परम्परावादी" मुस्लिम था, जिसे इस्लामिक सर्वमुक्तिवाद में विश्वास रखने वालों की भांति प्रायः अधिकांश विद्वानों द्वारा विरोधाभास के रूप में देखा जाता है। अन्य परम्परावादियों जैसे देवबंद के उलेमाओं की भांति वे भी इस्लामिक सर्वमुक्तिवाद अर्थात् विश्वव्यापी इस्लामिक उम्माह के कट्टर समर्थक थे, बल्कि शेष मिश्रित भारतीय राष्ट्रवाद के सबसे अधिक दृढ़ समर्थक थे। यह विरोधाभास है कि इस पर अधिक अनुसंधान करने की आवश्यकता है इससे स्वतः स्पष्ट करेगा कि तथाकथित परम्परावादी और धार्मिक दृष्टि से प्रवृत्त मुसलमानों ने हिन्दू प्रभुत्व कांग्रेस से निपटने के लिए इसे अधिक सरल पाया। जैसे जिन्ना, कुछेक की स्थिति के बिल्कुल प्रतिकूल था, उदार और धर्म निरपेक्ष राजनीतिज्ञ था, परन्तु अंततः पाकिस्तान के लिए संघर्ष का अग्रणी बन गया। यहाँ अब हम उन व्यक्तिक विचारकों की विचारधारा पर चर्चा नहीं करेंगे जिनहें आप बाद की इकाइयों में विस्तार से पढ़ेंगे।

### 3.6 निचली जातियों का विद्रोह

एक महत्वपूर्ण विषय जिसके संबंध में यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक है, वह है, निचली जातियों के नेताओं, जैसे ज्योतिराव फूले, ई.बी.आर. रामास्वामी नैकर (पेरियार के नाम से भी जाना जाता है) और बी.आर.अम्बेडकर के कार्य और विचारधारा है जिसमें दो तरीकों से मतभेद हुआ है। पहला, इन विचारकों ने किसी भी समय समाज सुधार का एजेण्डा नहीं छोड़ा और वास्तव में, राष्ट्रवाद की उनकी सभ्यक आलोचना इस प्रश्न पर जुड़ी रही। दूसरा, वे पश्चिम के बारे में गहरी दुहरी विचारधारा से ग्रस्त नहीं थे हिन्दू चिन्तकों के मामले में या शिब्ली नुमानी, मुहसिन-उल-मुल्क और इकबाल मुस्लिमों के मामले में समाज सुधारवादियों और राष्ट्रवादियों के विचार एक समान स्पष्ट दिखाई दिए। आप इन व्यक्तियों के अपने अपने विचारों के बारे में पढ़ेंगे परन्तु अभी हम इस कठोर मतभेद के कुछ कारणों की रूपरेखा पर संक्षेप में विचार करेंगे।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि निचली जातियों के विशेषकर दलितों के अधिकांश नेता हिन्दू समुदाय की धारणा को किसी भी प्रकार का सकारात्मक महत्व नहीं दे पाए। उनके लिए विगत की स्मृतियाँ और छूआछूत या समाज से हिन्सात्मक बहिष्करण, जैसे व्यवहारों के माध्यम से

लगातार होता रहा अपमान तथा अप्रतिष्ठा सबसे अधिक कटु अनुभव था जिसने उनकी सभी प्रतिक्रियाओं को मूर्त रूप दिया। इसलिए उनकी अवधारणा में उन समाज सुधार के प्रयासों में भी कुछ छलकपट दिखाई दिया था जो किसी भी तरीके में शक्ति संरचना के अस्त व्यस्त किए बिना हिन्दू समाज की मुख्यधारा में निचली जातियों का केवल आत्मसात करना चाहते थे।

इसलिए फूले की मुख्य चिंता हिन्दुत्व और जाति पर हर प्रकार के प्रहार से है जहाँ वह पूर्ववर्ती के अस्तित्व के केन्द्र बिन्दु के रूप में जातियों को देखता है। वास्तव में अधिकांश निचली जाति के प्रबल विचारकों के लिए हिन्दुत्व केवल ब्राह्मणवाद का दूसरा नाम है और वे इसे उस नाम से उल्लेख करना पसंद करते हैं। इसलिए फूले ने भी पेरियार की भांति उसकी तरह ब्राह्मणों की शक्ति के विरुद्ध सभी गैर-ब्राह्मणों या शूद्र-अतिशूद्रों को संगठित करने का प्रयास किया। यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस संघर्ष में प्रायः सभी निचली जातियों के प्रबल नेताओं ने नारी शिक्षा और स्वाधीनता के प्रश्न को विशेष महत्व दिया। इसलिए फूले ने बड़े जोखिम के साथ 1848 में शूद्र अतिशूद्रों की बालिकाओं के लिए पहला स्कूल स्थापित किया क्योंकि उसे ज्ञात था कि इससे ऊपरी जातियों के क्रोध का सामना करना पड़ेगा। बाद में उन्होंने सभी जातियों की बालिकाओं के लिए भी स्कूल स्थापित किया।

एक प्रकार से दलितों के लिए या पेरियार, 'गैर-ब्राह्मण' मुक्ति के मामले में शिक्षा महत्वपूर्ण थी क्योंकि यह उन्हें ज्ञान के क्षेत्र से उनका बहिष्कार करता था, इसे उनके दमन की मुख्य क्रियाविधि के रूप में देखा गया था। नए, आधुनिक विश्व में निचली जातियों को अपनी नियति स्वयं अपने हाथों में लेने के लिए अवसर खोल दिए थे। सबसे पहली बार उनका बहिष्कार उपनिवेशवाद के आगमन से उल्लेखनीय रूप से भंग हुआ जिसने उनके लिए न केवल शिक्षा के द्वार खोले अपितु धर्मनिरपेक्ष सार्वजनिक क्षेत्र भी खोला जहाँ वे ऊपरी जाति के दंड के भय के बिना आ-जा सकते थे। ऐसा होने पर दलित और शूद्र नेताओं ने "विधर्मी" और "भौतिकवाद" से अपने मतभेदों को उजागर करने में अधिक परवाह नहीं की। पश्चिम और बंधनों की उन बेड़ियों को तोड़ने के लिए प्रत्यक्षतः रूप से सम्बद्ध थे जो सदियों से उन्हें जकड़े हुए थे। उनके लिए औपनिवेशिक शासन यदि कुछ भी था तो वह उनके सबसे बड़े संरक्षक के रूप में प्रकट हुआ। यह पूरी तरह से इस कारण से है कि दलितों/शूद्रों की मुक्ति के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि उन्होंने इसे सामाजिक सुधार का एजेण्डा जारी रखने के रूप में देखा। यह ऐसा नहीं था कि उन्नीसवीं शताब्दी की ऊपरी जाति, भद्रलोक समाज सुधारकों के समाज सुधार में उनका बहुत विश्वास था परन्तु राष्ट्रवाद के उस सीमित एजेण्डा को भी त्यागना कुछ ऐसा था जिसे अम्बेडकर ने अपने लेखों और भाषणों में समय-समय में कटु शब्दों में व्यक्त किया। उन्होंने तिलक और उनके अनुयायियों का 1890 के दशक के आखिर में आयोजित सामाजिक सम्मेलन रोकने में उनकी भूमिका को विशेष रूप से याद किया।

यह भी महत्वपूर्ण है कि जब दलित और निचली जाति के विचारों का ध्यान स्पष्ट रूप राजनीति क्षेत्र में चला गया, जैसे पेरियार और अम्बेडकर के कार्यों के उदाहरण के रूप में देखा गया है, उनकी मुख्य चिंताएँ उभरते हुए राष्ट्र के भीतर सत्ता की संरचना रह गई थी जो स्वतंत्र भारत में सत्ता संभालेगा नई व्यवस्था में दलितों की क्या स्थिति होगी? और सत्ता की इस संरचना का केन्द्र "सामाजिक सुधार" का प्रश्न था, न कि छूआछूतों के "उत्थान" की अस्पष्ट भावना। जिसे गांधी ऊपरी जाति के अभिजात वर्ग की सत्ता को बाधा पहुँचाए बिना करने का प्रयास कर रहे थे परन्तु फूले अधिक आमूलचूल परिवर्तन तरीके में करने का प्रयास कर रहे थे। इन नेताओं और विचारकों ने भी अनुभव किया कि यदि सत्ता के प्रश्न सुलझाए बिना ब्रिटिश चला गया तो वे एक बार फिर गुलामी में जकड़ जाएँगे। यह वह भय था जिसने अम्बेडकर के और पेरियार के राजनीतिक जीवन का मुख्य मोर्चा बनाया। "संरक्षण" या "सामुदायिक आनुपातिक प्रतिनिधित्व" का प्रश्न विवादास्पद बन गया, जैसा इसे कहा भी गया है। निचली जाति के प्रमुख नेताओं ने अनुभव किया कि स्वतंत्रता देर सबेर आएगी, इसलिए संरक्षणों के

प्रश्न पर कठोर सौदाबाजी कर सत्ता के लिए दावा करना ठीक रहेगा, जबकि ब्रिटिश यहाँ अभी भी थे। यह वहीं संघर्ष है जिसने अम्बेडकर को गांधीजी के भावनात्मक ब्लेकमेल उसके कुख्यात मरणोन्त उपवास और अंततः पुणे संधि के लिए आंशिक सद्भावना खोने के लिए विवश किया।

---

### 3.7 सारांश

---

हमने देखा है कि कई अत्यंत जटिल परतें हैं जिन्हें हम "आधुनिक भारतीय विचारधारा" कहते हैं; कि वास्तव में विचारधारा की कोई एक ही निकाय नहीं है और न ही विषयों का एक ही सेट है जिससे उन्हें स्पष्ट कर सके। उनमें सभी का भिन्न-भिन्न इतिहास है और अनुभवों के भिन्न भिन्न सेटों से उत्पन्न हुए हैं। फिर भी हम पहचान कर सकते हैं, कम से कम हिन्दू और मुस्लिम विचारकों में औपनिवेशिक आधुनिकता से गहरी सम्बद्धता से दो पृथक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो सकती हैं: (क) हिन्दू या मुस्लिम समाज की विद्यमान अवस्था की कटु आलोचना और अधिकांश मामलों में परम्परा और प्रामाणिक धार्मिक पुस्तकों की भिन्न व्याख्या देकर नया रूप देने का प्रयास, (ख) पश्चिम की वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रगति में उसके अधानुकरण का प्रयास, जब कि साथ ही यह आलोचना करना जिसे उसकी सभ्यता का स्थूल भौतिकतावाद और पुनःधार्मिकता होना देखा गया है। हम गहरी द्वैधवृत्ति देखते हैं जो इस संबंध में समाज सुधारवादियों और राष्ट्रवादियों के प्रयासों को एक समान देखते हैं। हम यह भी देख सकते हैं कि राजनीतिक अवस्था में राष्ट्रवाद आने से हिन्दुओं में प्रभुसत्ता के लिए राजनीतिक संघर्ष का मार्ग कैसे प्रशस्त होता है। हम यह भी देख सकते हैं कि इस प्रावस्था में मुसलमानों में प्रतिक्रिया अधिक स्तरयुक्त और जटिल है। अंत में, हमने निचली जातियों में प्रभुत्व नेताओं का रुख पूर्णतः भिन्न देखा – एक ओर उपनिवेशवाद और पश्चिम तथा दूसरी ओर समुदाय, राष्ट्र और धर्म के बारे में भिन्न भिन्न रुख रहा है।

---

### 3.8 अभ्यास प्रश्न

---

- 1) आधुनिक भारतीय विचारधारा की प्रावस्थाओं पर चर्चा कीजिए।
- 2) भारत में सामाजिक सुधार आन्दोलन की प्रासंगिकता का विवेचन कीजिए।
- 3) भारत ने राष्ट्रवाद की भिन्न-भिन्न समस्याओं का विवेचन कीजिए।
- 4) भारत में मुस्लिम विचारधारा के भिन्न-भिन्न पहलुओं की चर्चा कीजिए।
- 5) निचली जातियों द्वारा संचालित भारतीय समाज का सुधार करने के लिए राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका का विवेचन कीजिए।